International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157
Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.org
Volume 3; Issue 3; May 2018; Page No. 74-76

ग्रामीण क्षेत्र में पूर्व प्राथमिक शिक्षा

डॉ0 जय प्रकाश पटेल[1], अंजू सिंह पटेल[2]
[1] बी0एच0एस0 अल्लापुर, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत।
[2] शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

यह सर्वविदित है कि किसी भी राष्ट्र के विकासपरक मानक में शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है। जिस देश में पढ़े–लिखे नागरिकों की अधिकता है, वह विकसित राष्ट्र की श्रेणी में आता है। जहाँ तक भारत देश की बात की जाय, वर्तमान में सभी बच्चों को प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध हो रही है। सामान्यतः प्राथमिक विद्यालय में बालक–बालिका का प्रवेश 6 वर्ष की आयु में होता है। यहाँ विचारणीय प्रश्न है कि 6 वर्ष की आयु से पूर्व बच्चों की शिक्षा कैसी हो? क्या 0–6 वर्ष आयु तक औपचारिक शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए? क्या शैशवावस्था में बच्चों को उचित शिक्षा प्राप्त हो रही है या नहीं? इस प्रकार के अनेक प्रश्न जनमानस में उभरकर सामने आता है। विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है कि बच्चों में सीखने की दृष्टि से जीवन के प्रथम 6 वर्ष अत्यधिक महत्वपूर्ण होते हैं। प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री डॉ0 सुशील कुमार व्यास लिखते हैं–''शैशवाकाल में बालक सर्वाधिक संवेदनशील होता है तथा सीखने की दिशा में अत्यधिक सक्रिय होता है।''[1] इसी समय बच्चों में मानसिक विकास की आधारशिला रखी जाती है। किशोरावस्था में बच्चों के व्यवहार में होने वाली गलतियों का प्रारम्भ शैशवास्था में हो जाता है। इसी कारण सभी मनोवैज्ञानिक एक मत है कि बच्चों की प्रथम शिक्षिका उसकी माँ होती है और प्रथम पाठशाला उसका परिवार होता है। बच्चे अपने जीवन के प्रथम 6 वर्ष में माता–पिता एवं परिवार से जो सीखते हैं, उसका प्रयोग जीवनभर करते हैं। इन्हीं कारणों से पूर्व प्राथमिक शिक्षा का महत्व बढ़ जाता है।

आधुनिक काल में पूर्व प्राथमिक शिक्षा के जन्मदाता जर्मनी के प्रख्यात शिक्षाशास्त्री फ्रोबेल को माना जाता है। उन्होंने 1837 ई0 में जर्मनी के ब्लेंकनबर्ग नामक गांव में पहला पूर्व प्राथमिक विद्यालय खोला। इंग्लैण्ड में पूर्व प्राथमिक शिक्षा को सर्वप्रथम मारगेरेट मैकमिलन ने प्रारम्भ किया और इटली में डॉ0 मेरिया मॉन्टेसरी ने पूर्व प्राथमिक शिक्षा का सूत्रपात किया। जहाँ तक हमारे देश भारत की बात की जाय। यहाँ पूर्व प्राथमिक शिक्षा का प्रारम्भ वैदिक काल से परिलक्षित होता है। वैदिक काल में औपचारिक शिक्षा का प्रारम्भ उपनयन संस्कार से होता था, परन्तु इसके पूर्व परिवार में ही विद्यारम्भ संस्कार के प्रमाण मिलते हैं। यह विद्यारम्भ संस्कार को पूर्व प्राथमिक शिक्षा की श्रेणी में रख सकते हैं। हाँ आधुनिक कालीन शिक्षा व्यवस्था में पूर्व प्राथमिक शिक्षा का सूत्रपात ईसाई मिशनरियों ने किया। इसे भारतीय समाज में लोकप्रिय बनाने में डॉ0 मॉन्टेसरी का विशेष योगदान रहा है। भारतीय स्वतंत्रता के उपरान्त पूर्व प्राथमिक शिक्षा में तीव्र गति से सुधार हुआ, परन्तु यह सुधार सिर्फ शहरों तक सीमित रहा। ग्रामीण क्षेत्र में आज भी निराशाजनक स्थिति है।

पूर्व प्राथमिक शिक्षा की ग्रामीण क्षेत्र में क्या दशा है? इस पर विचार करने से पहले पूर्व प्राथमिक शिक्षा के अभिप्राय को स्पष्ट करना आवश्यक है। पूर्व प्राथमिक शिक्षा के सन्दर्भ में प्रो0 एस0पी0 गुप्ता ने लिखा है–''बालक प्राथमिक स्कूल की कक्षा में प्रवेश से पूर्व जो भी शिक्षा प्राप्त करता है, उसे पूर्व प्राथमिक शिक्षा कहते हैं। वास्तव में पूर्व प्राथमिक शिक्षा माता के गर्भधारण से प्रारम्भ हो जाती है तथा बालक की आयु 5 से 6 वर्ष होने तक चलती है।''[2] इसी प्रकार के विचार डॉ0 सुशील कुमार व्यास का है–''पूर्व प्राथमिक शिक्षा वह शिक्षा है जो बालक का विद्यालय में नियमित प्रवेश से पूर्व प्रदान की जाती है। यह कोई निश्चित विद्यालय समय में ही प्रदान नहीं की जाती है।''[3] प्रो0 गुप्ता एवं डॉ0 व्यास के विचारों से पूर्व प्राथमिक शिक्षा प्राथमिक शिक्षा में प्रवेश से पहले की अनौपचारिक शिक्षा है। यहाँ स्पष्ट करने की आवश्यकता है कि पूर्व प्राथमिक शिक्षा को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है। पहला बालक के जन्म से पूर्व की शिक्षा, दूसरा बालक के जन्म से 3 वर्ष आयु तक की शिक्षा और तीसरा बालक के 3 वर्ष से 6 वर्ष आयु तक की शिक्षा। बच्चे के जन्म से पूर्व की शिक्षा में माता के गर्भ में बच्चे की देखभाल की जाती है। इस आयु में बच्चे के शारीरिक, मानसिक एवं संवेगात्मक विकास के लिए माँ के भोजन, स्वास्थ्य, मनोस्थिति पर ध्यान दिया जाता है। जन्मोत्तर से तीन वर्ष की आयु तक की शिक्षा में परिवार, पास–पड़ोस एवं रिश्तेदारों से अर्जित ज्ञान आता है। बच्चे के 3 से 6 वर्ष की आयु तक की शिक्षा में औपचारिक एवं अनौपचारिक दोनों प्रकार की शिक्षा को रखा जाता है। इसे ही पूर्व प्राथमिक शिक्षा की आयु मानी जा सकती है। प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री शशी चित्तौड़ा एवं हरिशचन्द्र नरसावत ने लिखा है–''तीन से छः वर्ष की आयु पूर्व प्राथमिक शिक्षण हेतु सर्वमान्य है।''[4] कुछ मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि बच्चों को 6 वर्ष की आयु तक सिर्फ अनौपचारिक शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए। इसके विपरीत अधिकांश मनोवैज्ञानिकों का मत है कि 3 से 6 वर्ष की आयु तक के बच्चों के लिए औपचारिक एवं अनौपचारिक दोनों प्रकार की शिक्षा आवश्यक है। औपचारिक संस्थाओं में भी अनौपचारिक शिक्षा जैसी व्यवस्था होनी चाहिए, जिससे बच्चे को बन्धन का एहसास न हो।

हम इक्कीसवीं सदी के शैक्षिक क्रान्ति के दौर में है। शिक्षा सिर्फ पुस्तक पढ़ने–लिखने तक सीमित नहीं है। गुणात्मक शिक्षा की अति आवश्यकता है। इस कारण पूर्व प्राथमिक स्तर से ही बच्चों के लिए गुणात्मक शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए। लगभग सभी विकसित देशों में पूर्व प्राथमिक विद्यालय सर्वसुलभ है। हमारे देश भारत की स्थिति निराशाजनक है। माना कि शहरों में पर्याप्त विद्यालय है और अभिभावक जागरूक हैं, परन्तु ग्रामीण क्षेत्र में अत्यन्त निराशाजनक स्थिति है। गांव में पर्याप्त पूर्व प्राथमिक शिक्षा संस्थान उपलब्ध नहीं है। जो संस्थान है, उनमें या तो मनोवैज्ञानिक भौतिक परिवेश पूर्ण नहीं है या इतना अधिक शुल्क है कि गांव का साधारण व्यक्ति की पहुँच से दूर है। हाँ, सरकार ने आंगनबाड़ी केन्द्र की स्थापना करके

अत्यधिक सराहनीय कार्य किया है किन्तु उनकी व्यवस्था एवं क्रियाकलाप चिन्ताजनक है। अधिकांश आंगनबाड़ी केन्द्रों का स्वयं भवन नहीं है। इस संदर्भ में डॉ0 रश्मि श्रीवास्तव ने लिखा है–''उत्तर प्रदेश में संचालित आंगनबाड़ी केन्द्रों का हालत बड़ी ही सोचनीय है। ऐसे केन्द्रों की संख्या बहुत कम है जिनके पास अपने भवन हैं। बड़ी संख्या में केन्द्र प्राथमिक स्कूल, पंचायत भवन, किराये के भवन तथा कार्यकत्रियों के घरों में चल रहे हैं।''[5] उ0प्र0 में किसी तरह चल रहे आंगनबाड़ी केन्द्रों की स्थिति संतोषजनक न होने के कारण में शासन, कार्यकत्री एवं अभिभावक को जिम्मेदार माना जा सकता है। शासन द्वारा पर्याप्त सामग्री एवं धन उपलब्ध नहीं कराया जा रहा है। जो संसाधन उपलब्ध है उनका पूरा उपयोग कार्यकत्री द्वारा नहीं किया जाता है। माना कि कुछ कार्यकत्री पूर्ण मनोयोग से बच्चों के प्रति समर्पित रहती हैं, परन्तु यह संख्या संतोषजनक नहीं है। इसके साथ अभिभावक को भी जिम्मेदार माना जा सकता है। अभिभावकों को जागरूक होने से आंगनबाड़ी केन्द्रों का सुचारू संचालन होना स्वाभाविक है। आंगनबाड़ी कार्यकत्री एवं अन्य कर्मचारी अपने उच्च अधिकारियों के दबाव में आ सकता है, परन्तु अभिभावक स्वतंत्र होते है। वे शासन से आवश्यक सुविधाओं की मांग कर सकते हैं और कुछ अकर्मठ कार्यकत्री को शासनानुसार कार्य करने के लिए मजबूर कर सकते है। कहने का तात्पर्य है कि आंगनबाड़ी केन्द्र के सुचारू संचालन हेतु अभिभावक को जागरूक होना अति आवश्यक है। अभिभावक को अपने बच्चों के अधिकारों की जितनी जानकारी होगी, आंगनबाड़ी केन्द्र उतनी ही सुचारू ढंग से कार्य करेगा।

ग्रामीण क्षेत्र में अधिकांश परिवार कृषि, पशुपालन, मजदूरी, कुटीर उद्योग या अन्य छोटे व्यवसाय से जीविकोपार्जन करता है। उनके लिए व्यक्तिगत संस्थाओं में पूर्व प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराना कठिन है। इन विद्यालयों में प्रवेश शुल्क, शिक्षा शुल्क, पुस्तकें, स्टेशनरी एवं पोशाक आदि अत्यधिक व्यय साध्य है, जो सामान्य नागरिकों की पहुँच से दूर है। कुछ सम्पन्न परिवार के पाल्य ही शिक्षा ग्रहण कर पाते हैं। अन्य शिक्षा व्यवस्था की तरह पूर्व प्राथमिक शिक्षा संस्थाओं पर भी शासकीय कठोर नियंत्रण आवश्यक है। इसी प्रकार हमारे देश की पूर्व प्राथमिक शिक्षा संस्थाओं के उद्देश्य, पाठ्यक्रम एवं शिक्षण विधियों का निर्धारण नहीं है। प्रत्येक विद्यालय अपने अनुसार पूर्व प्राथमिक शिक्षा का उद्देश्य निर्धारण करता है। कुछ विद्यालयों में शारीरिक अंग संचालन पर जोर दिया जाता है तो कुछ में बोध की क्षमता पर। इसी प्रकार कुछ विद्यालय औपचारिक ढंग से कई पाठ्य पुस्तकों का संचालन करते हैं और पाठ्य सहगामी क्रियाओं को उचित स्थान नहीं देते हैं। पुस्तकीय शिक्षा में अध्यापक बच्चों के प्रति संवेदनशील नहीं रहता है। वह परम्परागत शिक्षण विधियों का प्रयोग करता है जिससे बच्चों को बन्धन का एहसास हो सकता है। चूंकि बच्चा नए परिवेश में घर के माता–पिता एवं पारिवारिक सदस्यों के स्नेह एवं संरक्षण से वंचित होता है। इस कारण बच्चों के बाल–मन के अनुसार शिक्षण विधि होनी चाहिए। कुछ पूर्व प्राथमिक शिक्षा केन्द्र पाठ्यक्रम एवं शिक्षण विधियों के नाम पर अनौपचारिक शिक्षण करती है। उनमें बच्चों के लिए विद्यालय उपलब्ध है, परन्तु आन्तरिक वातावरण पूर्णतः परिवार जैसा अनौपचारिक है। यह मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सर्वथा उचित प्रतीत होता है। पूर्व प्राथमिक विद्यालय में बच्चों के लिए पूर्णतः घर जैसा वातावरण होना चाहिए। इस सम्बन्ध में कोठारी आयोग में कहा गया है–''हम पूर्व प्राथमिक विद्यालयों के लिए पाठ्यक्रम की मुश्किल से ही बात कर सकते हैं। इसको क्रियाकलाप कार्यक्रम समझना ही अधिक उचित है।''[6] इसी कारण पूर्व प्राथमिक विद्यालयों में महिला शिक्षिकाओं का होना आवश्यक है। इन्हें बाल स्वभाव का ज्ञान होता है और बच्चों के प्रति सहानुभूतिपूर्वक व्यवहार करती है। एक समस्या अधिकांश विद्यालयों में देखी जाती है, जिसे दूर करने की आवश्यकता है। पूर्व प्राथमिक विद्यालय में अविवाहित युवतियों को मातृत्व का अनुभव नहीं होता है, परन्तु वे कम वेतन पर कार्य करने को तैयार हो जाती हैं। इन्हीं युवतियों को मातृत्व अनुभव के उपरान्त जब वे पूर्व प्राथमिक शिक्षिका के लिए सर्वाधिक उपयुक्त एवं अनुभवी हो जाती है तो वेतन बाधा बनता है। पारिवारिक जिम्मेदार महिला के लिए पर्याप्त वेतन की जरूरत होती है, जिसे अधिकांश प्रबन्ध तंत्र नकार देता है। स्वयं सरकार द्वारा निर्धारित आंगनबाड़ी कार्यकत्रियों का वेतन संतोषजनक नहीं है। इस विषय पर शासन, प्रबन्धतंत्र, शिक्षिका एवं अभिभावकों को मिलकर विचार–विमर्श करने की आवश्यकता है।

पूर्व प्राथमिक शिक्षा में अभिभावक सबसे महत्वपूर्ण कड़ी होते हैं। उन्हें जागरूक होने की अति आवश्यकता है। अभिभावक की भूमिका के सम्बन्ध में विनोबा भावे ने कहा था–''मेरे विचार से छोटे बालकों की शिक्षा परिवार में ही होनी चाहिए। माता–पिता ही बालक के पहले शिक्षक होते हैं और अन्यान्य शिक्षकों की अपेक्षा उनका अधिकार अधिक होता है, परन्तु उसके लिए आवश्यक है कि उनमें शिक्षा देने लायक योग्यता हो।''[7] हमारे देश के ग्रामीण क्षेत्र में कुछ अभिभावक या तो शिक्षित नहीं हैं या शिक्षित होने के बावजूद बच्चों के शैशवावस्था में शैक्षिक दृष्टि से गम्भीर नहीं होते हैं। इसके लिए अभिभावकों को जागरूक करने की आवश्यकता है। जो अभिभावक घर पर बच्चों को पूर्व प्राथमिक शिक्षा देने में असमर्थ हैं। उनके बच्चों के लिए विद्यालय नहीं अपितु बालघर की आवश्यकता है। जहाँ बच्चा पारिवारिक वातावरण में सरल तरीके से ज्ञान प्राप्त कर सके। बालघर का अभिप्राय स्पष्ट करते हुए सुभाषिनी कपूर ने लिखा है–''बालघर ऐसे वातावरण को कहते हैं जहां प्रत्येक वस्तु बच्चों की दृष्टि से होती है। उनके व्यक्तित्व का विकास हो सके और जीवन के अनुभव ग्रहण कर सके।''[8] मनोवैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है कि बच्चों का शैशवकाल अतिसंवेदनशील होता है। इस समय औपचारिक शिक्षा का दबाव नहीं होना चाहिए। औपचारिक ज्ञान भी अनौपचारिक ढंग से दी जाय। माना कि इस कार्य के लिए माता–पिता एवं परिवार के अन्य सदस्य सर्वाधिक दक्ष होते हैं, परन्तु इक्कीसवीं सदी के सामाजिक वातावरण में पूर्व प्राथमिक शिक्षा केन्द्र आवश्यक होता जा रहा है। जो माता–पिता शिक्षित नहीं हैं वे बच्चों को मनोवैज्ञानिक ढंग से देखभाल नहीं कर पाते हैं और शिक्षित होने पर माता–पिता दोनों कामकाजी हो जाते हैं। इससे पूर्व प्राथमिक शिक्षा केन्द्र की आवश्यकता पड़ती है। हां यह भी सत्य है कि कुछ चमत्कारी बच्चों ने सभी मनोवैज्ञानिक सीमाओं को तोड़कर अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन किया है, परन्तु अधिकांश बच्चों के लिए पूर्व प्राथमिक शिक्षा केन्द्र अपेक्षित है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्राथमिक शिक्षा में प्रवेश से पहले पूर्व प्राथमिक शिक्षा होती है। पूर्व प्राथमिक शिक्षा में गर्भाधान से बच्चे के जन्म तक माता की देखभाल की जानी चाहिए। बच्चे के जन्म से 3 वर्ष तक सिर्फ अनौपचारिक ढंग से परिवार एवं पास–पड़ोस में दैनिक आवश्यकताओं का ज्ञान देना चाहिए। 3 से 6 वर्ष की आयु में भी बच्चों के देखभाल एवं शिक्षा की जिम्मेदारी सिर्फ परिवार की होनी चाहिए। यदि परिवार बच्चों को शैक्षिक वातावरण देने में असमर्थ हो तो भी पूर्व प्राथमिक शिक्षा केन्द्र मात्र 2–3 घण्टे का होना चाहिए। जिस परिवार में माता–पिता दोनों कामकाजी है या किसी एक के न होने की स्थिति में पूर्व प्राथमिक शिक्षा केन्द्र पर बच्चों को अधिक समय देना पड़ता है। इन पूर्व प्राथमिक शिक्षा केन्द्र का वातावरण परिवार के अनुरूप होना चाहिए। बच्चों पर औपचारिक शिक्षा का दबाव न हो। यह एक

पारिवारिक संस्था होनी चाहिए। शहरों में इस तरह की कई संस्थाएं चलती है, परन्तु ग्रामीण क्षेत्र में अभाव है। भारत में पूर्व प्राथमिक शिक्षा का एक नकारात्मक पक्ष यह भी है कि यह व्यय साध्य अधिक होती है। जिससे सामान्य परिवार के बच्चों के लिए मात्र कल्पना साबित होती है। इस कारण गांव में सामान्य परिवार के अधिकांश बच्चे परिवार एवं पास–पड़ोस से ही शिक्षा ग्रहण करते हैं। इस पर शासन एवं गैर सरकारी सामाजिक संगठन को विशेष ध्यान देने की जरूरत है। जो पूर्व प्राथमिक शिक्षा केन्द्र संचालित है, उनका शैक्षिक वातावरण पारिवारिक एवं सामाजिक होना चाहिए और पाठ्यक्रम एवं शिक्षण विधियां मनोवैज्ञानिक होनी चाहिए। अतः स्पष्ट है कि बच्चे का शैशवकाल सम्पूर्ण जीवन का आधारशिला है। इस समय पुस्तकीय शिक्षा नहीं बल्कि अनौपचारिक ज्ञान का उचित प्रबन्ध होनी चाहिए। जिससे बच्चों का प्रत्येक क्षेत्र में उचित विकास हो और यह ज्ञान भावी जीवन में सहायक बनें। बच्चे का समग्र विकास ही परिवार, समाज एवं देश के लिए सर्वाधिक हितकारी होगा।

सन्दर्भ

1. डॉ0 सुशील कुमार व्यास–'पूर्व प्राथमिक शिक्षा', अभिषेक प्रकाशन, बीकानेर (2009), पृ0 2
2. प्रो0 एस0पी0 गुप्ता एवं डॉ0 अलका गुप्ता–'भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्यायें', शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद (2009), पृ0 286
3. डॉ0 सुशील कुमार व्यास–'पूर्व प्राथमिक शिक्षा', अभिषेक प्रकाशन, बीकानेर (2009), पृ0 1
4. शशी चित्तौड़ा एवं हरिशचन्द्र नरसावत–'पूर्व प्राथमिक शिक्षा : सिद्धान्त एवं विधियां', राजस्थान प्रकाशन, जयपुर (2004), पृ0 3
5. डॉ0 रश्मि श्रीवास्तव–'उत्तर प्रदेश में आंगनबाड़ी केन्द्र : समस्या तथा समाधान (लेख)', शिक्षा चिंतन–त्रिमूर्ति संस्थान नोएड़ा, अप्रैल–जून 2012, पृ0 18
6. पी0डी0 पाठक एवं गुरसरनदास त्यागी–'भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएं', अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा (2014–15), पृ0 253
7. भाई योगेन्द्रजीत–'बुनियादी शिक्षा', सरस्वती सदन मसूरी (1962), पृ0 224
8. सुभाषिणी कपूर–'बालधर', आदित्य बुक सर्विस, दिल्ली (2012), पृ0 9–10